भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

रितेश सिन्हा

बनाम्

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार

(आपराधिक अपील संख्या-2003/2012)

(इलाहाबाद उच्च न्यायालय के द्वारा आपराधिक विविध आवेदन संख्या-3272/2010 में दिनांक 09.07.2010 को पारित निर्णय एवं आदेश से उद्भूत)

साथ ही

(आपराधिक अपील संख्या-1318/2013. 1187, 1188, 1189 एवं 1190/2019)

02 अगस्त, 2019

रंजन गोगोई, भारत का मुख्य न्यायाधीश, दिपक गुप्ता एवं संजीव खन्ना न्यायाधीषगण,

पक्षकारगण की तरफ से- संजय जैन, ए.एस.जी, गुरूकृष्णा कुमार, एस नागमुथु, वरीय अधिवक्तागण, सिद्वार्थ दवे, सुश्री जेमती बेन, ए.ओ. सेनथिल जगादी सेन, प्रकाष गौतम, युवराज ष्षर्मा, सुश्री सानिया स्कौट, भी.बाला जी, बी.भी.बलराम दास, अरूरनभ चैधरी, अंकुर चावला, अमिर खान, कर्मा दोरजी, सुश्री पल्लवी प्रताप, सुश्री गरिमा प्रसाद, आषीष प्रताप सिंह, मोहित कुमार वंषज, वाई अरूणा गिरि, पी.सोमा सुन्दरम, सुश्री प्रेरणा मेहता, सौरव अजय गुप्ता, भरत सेन, विष्वपाल सिंह, इरशाद अहमद, अर्धेन्दुमौली कुमार प्रसाद, सुश्री तरूणा अर्धेन्दुमौली प्रसाद, नमित सक्सेना, पियूष सिंह, अमृतेष राज, नितेष रंजन, वैभव श्रीवास्तव, नचिकेता जोषी, राजेष कु. सिंह, मुकुल सिंह, अनिकेत सेठ, अरबिन्द कुमार शर्मा, अष्विनी कुमार, सुश्री ईती शर्मा, सुश्री कुमुद लता दास, जय कुमार, रविन्द्र नयन, अधिवक्तागण।

अमन आहुलवालिया, अधिवक्ता (ए.सी)

न्यायालय का निर्णय रंजन गोगोई भारत के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा दिया गया

1. विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या-9671/2017, 1048/2018 एवं 3272/2018 में लीभ मंजूर की गयी।

2. आपराधिक अपील संख्या-2003/2012

निर्णय

तथ्यः-

07 दिसम्बर, 2009 को उत्तर प्रदेश राज्य के सहारनपुर जिले में स्थित सदर बाजार, पुलिस स्टेशन के इलेक्ट्रॉनिक सेल के प्रभारी ने एक प्रथम सूचना रिर्पोट (संक्षिप्त में "एफ.आई.आर") दर्ज की, जिसमें यह अभिकथित किया कि धुम सिंह नामक एक व्यक्ति ने अपीलकर्ता रितेष सिंह के साथ मिलकर पुलिस में नौकरी दिलाने का वादा करके विभिन्न लोगों से धन एकत्र करने में लगा हुआ था। धुम सिंह को गिरफ्तार किया गया एवं उसके पास से एक मोबाइल फोन जब्त किया गया। विवेचना पदाधिकारी यह सत्यापित करना चाहता था कि क्या मोबाईल फोन में रिकार्ड की गयी बातचीत धुम सिंह और अपीलकर्ता रितेष सिन्हा के बीच हुयी थी। इसलिए उन्हें अपीलकर्ता के आवाज के नमूने की आवश्यकता थी और तदनुसार, उसने उक्त क्षेत्राधिकार के विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, (संक्षिप्त में "सी.जे.एम") के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें अपीलकर्ता को उसकी आवाज का नमूना रिकार्ड करने के लिए अदालत में बुलाने की प्रार्थना की।

3. विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, सहारनपुर ने दिनांक 08 जनवरी, 2010 के आदेश के द्वारा अपीलकर्ता को विवेचना अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने और अपना आवाज का नमूना देने के लिए सम्मन जारी किया। विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के इस आदेश को दण्ड प्रकिया संहिता, 1973 (इसके बाद "सी.आर.पी.सी" के रूप में संदर्भित) की धारा 482 के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के द्वारा चुनौती दी गयी याचिका को जब अपने आदेश दिनांक 09.07.2010 के तहत अस्वीकृत कर दिया गया तो यह वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

4. अपील को इस न्यायालय के दो न्यायाधीशगण के खंडपीठ द्वारा सुनवाई की गयी और विभाजित फैसले द्वारा निष्पादित किया गया, जिससे वर्तमान संदर्भ की आवश्यकता है।

5. अपील के निर्धारण के लिए दो प्रमुख प्रश्न उठे जो न्यायमूर्ति रंजना प्रकाश देसाई के आदेश दिनांक 07.12.2012 में निम्नलिखित शर्तों में निर्धारित किए गये हैः-

"(1). क्या भारत के संविधान का अनुच्छेद 20(3) जो किसी व्यक्ति को अपने विरूद्ध गवाह बनने के लिए मजबूर होने से बचाता है, ऐसे व्यक्ति को जांच के दौरान अपनी आवाज का नमूना देने के लिए मजबूर होने से बचाता है।

(2). यह मानते हुए कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 20(3) का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है, क्या इस संहिता में किसी प्रावधान के अभाव में एक दण्डाधिकारी किसी जांच एजेंसी को किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के आवाज के नमूने को दर्ज करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है।"

6. जबकि बाम्बे राज्य काठी कालू औघड़ ए.आई.आर 1961 एस.सी. 1808 के मामले में प्रथम प्रश्न का उतर न्यायमूर्ति रंजना प्रकाष देसाई और न्यायमूर्ति अफताब आलम ने प्रतिपादित कानून को ध्यान में रखते हुए नकारात्मक रूप में दिया था, जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, मत विभाजन हुआ था।

7. न्यायमूर्ति रंजना प्रकाष देसाई ने यह विचार व्यक्त किया कि आवाज के नमूना को दण्ड प्रक्रिया संहिता के धारा 53 के स्पष्टीकरण (क) में आने वाले वाक्यांश "ऐसे अन्य परीक्षणों" में शामिल किया जा सकता है। ऐजुसडेम जेनेरिस के सिद्धान्त को लागू करने से एक दण्डाधिकारी के पास धारा 53 द्र.प्र.सं. के तहत एक निहित शक्ति होगी कि वह आपराधिक जांच में सहायता के लिए आवाज के नमूना लेने की अनुमति देने का आदेश पारित कर सके।

8. दूसरी ओर, न्यायमूर्ति आफताब आलम ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी आरोपी पर अपनी आवाज का नमूना देने की बाध्यता को न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया के बजाय विधान मंडल द्वारा पारित कानून के आधार पर अधिकृत किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में, विद्वान न्यायमूर्ति (आफताब आलम) ने 2005 के अधिनियम संख्या 25 द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 53, 53 (क) एवं 311 (क) में दिनांक 23.06.2006 को लागू संशोधनों पर भी ध्यान दिया, जिसके अनुसार दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपरोक्त प्रावधानों के दायरों में विचारण न्यायालय में किसी आपराधिक आरोप की जांच के उद्देश्य से किसी आरोपी को अपनी आवाज का नमूना देने के लिए मजबूर करने की कोई शक्ति नहीं थी।

9. पहले प्रश्न पर अपील की सुनवाई करने वाले विद्वान न्यायाधीषगण के बीच सर्वसम्मति होने के बावजूद, जिस पर अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी ज्यादा जोर नहीं दिया है, बाम्बे राज्य बनाम् काठी कालु औघड़ के मामले प्रतिपादित परीक्षण विधिक सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न का उत्तर देना उचित होगा। बहुमत की तरफ से बोलते हुये तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायाधीश वी.पी.सिन्हा का विचार था कि अनुच्छेद 20(3) में निहित संवैधानिक प्रावधान द्वारा विचार किया गया निषेध केवल किसी अभियुक्त की गवाही के मामलों में आएगा जो आत्म-दोषारोपण करने वाले है या ऐसा चरित्र जिसमें अभियुक्त को स्वयं दोषी ठहराने की प्रवृति होती

है। इस वाद में विवाद्यक मुद्दा अभियुक्त की दोषिता निर्धारित करने के लिए अन्य लेखों के साथ तुलना करने के लिए अभियुक्त से लिये गये नमूना लेखन  के संदर्भ में था और क्या इस तरह की कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 20(3) के तहत निषिद्ध थी। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वी.पी.सिन्हा के निम्नलिखित टिप्पणियों को याद करना रखने योग्य होगा, क्योंकि यही निर्णायक रूप से उठने वाले पहले प्रश्न  को निर्धारित करता है, इसलिए इसे नीचे दिया गया है।

"(11) यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अनुच्छेद 20(3) एक आरोपी व्यक्ति द्वारा  आत्म-दोषारोपण के खिलाफ निर्देशित है। आत्म-अभिषंसन का मतलब होना चाहिए सूचना देने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर सूचना देना होना चाहिए और इसमें केवल अदालत में कागजात पेश करने की यांत्रिक प्रक्रिया शामिल नहीं हो सकती है जो कि विवाद के किसी भी बिन्दु पर प्रकाश डाल सकती है, जिसमें आरोपी के उसके व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर आधारित कोई ज्ञान शामिल नहीं है।

(12) किसी आरोपी व्यक्ति द्वारा दी गयी गवाही को आत्म-दोषारोपण योग्य बताने के लिए संवैधानिक प्रावधान निषेध के अंतर्गत आने वाले बाध्यता इस प्रकार होने चाहिए कि वह अपने आप में अभियुक्त को दोषी ठहराने की प्रवृति वाली हो, यदि वास्तव में ऐसा करने का नहीं भी हो तो, दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसा बयान होना चाहिए जो अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ मामले को कम से कम संभावित बनाता है, जिस पर स्वयं विचार किया जाता है। एक नमूना लिखावट या हस्ताक्षर या उंगलियों के निशान अपने आप कोई गवाही नहीं है पूरी तरह से हानिकर होने के कारण क्योंकि वे अपरिवर्तनीय है सिवाय ऐसे दुर्लभ मामलों में जहां उंगलियों की उभार या लिखने की शैली के साथ छेड़छाड़ की गयी हो। वे अदालत को यह आश्वासन देने के लिए तुलना के लिए केवल सामग्री है कि साक्ष्य की अन्य टुकड़ों के आधार पर इसका अनुमान विश्वसनीय है। वे न तो मौखिक और न ही दस्तावेजी साक्ष्य है, बल्कि भौतिक साक्ष्य के तीसरी श्रेणी से संबंधित है जो "गवाही" की सीमा से बाहर है।

(जोर दिया गया)

10. अब हम दूसरे प्रश्न  का उत्तर देने के लिए आगे बढ़ सकते है, अर्थात क्या दण्ड प्रकिया संहिता में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में क्या कोई न्यायालय जांच एजेंसी को किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति की आवाज का नमूना रिकार्ड अधिकृत करने समक्ष होगी। हमें बताया गया है कि इस न्यायालय द्वारा कोई प्रमाणिक निर्णय इस बिन्दु पर नहीं दी गयी है।

11. एक अभियुक्त की चिकित्सीय जांच का धारा 53 द.प्र.सं. के स्पष्टीकरण में दिनांक 23 जून, 2006 (2005 की अधिनियम सं0 25) के संषोधन से आपराधिक आरोप की प्रभावी जांच के प्रयोजनों के लिए व्यापक अर्थ प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार, बलात्कार के आरोपी व्यक्ति की जांच

के लिए धारा 53 ए को उसी संषोधन अधिनियम (2005 की अधिनियम सं0 25) द्वारा जोड़ा गया है। इसी तरह उसी संषोधित अधिनियम (2005 की अधिनियम सं0 25) द्वारा धारा 311ए को शामिल करके एक दण्डाधिकारी को किसी भी व्यक्ति को, जिसमें एक आरोपी व्यक्ति भी शामिल है, को किसी भी जांच या कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए नमूना हस्ताक्षर या लिखावट देने का आदेश देने का अधिकार द.प्र.सं. के तहत दिया गया है।

12. उक्त संषोधनों में से कोई भी किसी दण्डाधिकारी को किसी आरोपी व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति को संहिता के तहत पूछताछ या जांच के उद्देश्यों के लिए अपनी आवाज का नमूना देने का निर्देश देने के लिये विशेष रूप से सशक्त या अधिकृत नहीं कर सकता है। विशेष रूप से ऐसा प्रावधान करने में विधानमंडल की "चूक" ने दो न्यायाधीशों के पीठ के विद्वान न्यायाधीश (न्यायमूर्ति अफताब आलम) को इस बात पर संदेह करने के लिए प्रेरित किया है कि क्या विधायी ज्ञान एक विशिष्ट बहिष्करण या चूक के पक्ष में था ताकि व्याख्या की प्रकिया के माध्यम से न्यायिक अभ्यास को अस्वीकार्य बनाया जा सके।

13. भारत के विधि आयोग ने 29 अगस्त, 1980 को अपनी 87वीं रिपोर्ट में, वर्तमान में न्यायालय के सामने मौजूद प्रश्न से निपटने का अवसर दिया था। विधि आयोग ने कैदी पहचान अधिनियम 1920 के प्रावधानों के कामकाज के संदर्भ में, (लगभग 4 दशक पूर्व) मामले की जांच की। विचार यह था कि एक उपर्युक्त कानून कैदियों के पहचान अधिनियम 1920 के धारा 5 में संबोधन के रूप में होगा ताकि एक न्यायिक दण्डाधिकारी को किसी आरोपी व्यक्ति को अपनी आवाज का नमूना देने के लिए मजबूर करने का अधिकार दिया जा सके। 29 अगस्त, 1980 की विधि आयोग की 87वीं रिपोर्ट से निम्नलिखित उद्धरण प्रासंगिक होगा।

"वोईस प्रिंट आवाज की दृष्य रिकॉर्डिंग है, यह मुख्य रूप से "फॉर्मेट" की स्थिति पर निर्भर करता है। एक निश्चित आवृति पर ध्वनि ऊर्जा संक्रेंद्रण है। यह कहा गया है कि (आवृति क्षेत्र) में उनकी स्थिति प्रत्येक वक्ता के लिए अद्वितीय है। आवाज की निषान उंगलियों के निषान मिलते-जुलते है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की एक विशिष्ट आवाज होती है, जिसमें मुखर गुहायों और मुखरदाताओं द्वारा निर्धारित विशिष्ट विशेषताएं होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वोईस प्रिंट पहचान के कई व्यावहारिक उपयोग है। इग्लैंड में नवम्बर, 1967 में, विनचेस्टर मजिस्ट्रेट कोर्ट में एक व्यक्ति पर दुर्भावनापूर्ण टेलीफोन कॉल करने का आरोप लगाया गया। ध्वनि-मुद्रित पहचान (स्पेक्टोग्राफ) का उपयोग किया गया और आरोपी को दोषी पाया गया।"2

,,,,,,,,,

"अक्सर यह वांछनीय हो जाता है कि आपराधिक अपराधी के रूप में पहचानने का प्रयास करने के उद्देश्य से किसी आरोपी व्यक्ति से बात की जाए ताकि पुलिस को उसकी आवाज सुनने का

मौका मिल सके। एक अभियुक्त व्यक्ति की आवाज और एक अपराधी की रिकार्ड की गयी आवाज के बीच तुलना की भी इच्छा की जा सकती है जो टेलीफोन टैंपिग द्वारा प्राप्त की गयी है। अपराध के सबूत के सुविधा के लिये पुलिस यह चाहेंगी कि आरोपी को बोलने के लिए मजबूर किया जाए और यहां तक कि रिकार्ड की गयी उसकी आवाज को "वोईस प्रिंट में" में परिवर्तित किया जाए।"

.....

.....

"हालांकि यदि अभियुक्त ऐसी आवाज देने के इनकार करता है तो उसे ऐसा करने के लिए मजबूर करने के लिए कोई कानूनी मंजूरी नहीं है एवं उस उद्देश्य के लिए बल का उपयोग अवैध होगा।

,,, ,,, ,,,,

"धारा 5 के दायरे का एक अन्य पहलू में विस्तारित करने की आवश्यकता है। आपराधिक प्रकिया संहिता के तहत पुलिस को दी गयी जांच की सामान्य शक्ति का अर्थ यह नहीं हो सकता है कि आरोपी को अपनी आवाज का नमूना प्रस्तुत करने की आवश्यकता हो। ऐसे मामले ज्ञात है जिनमें अपराधी की आवाज के साथ तुलना के लिए आरोपी की आवाज प्राप्त की गयी थी, लेकिन इस सवाल पर कि क्या आरोपी को ऐसा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, भारत में अब तक इस पर बहस नहीं हुयी है।

भारतवर्ष में ऐसा कोई विशिष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं है जो किसी पुलिस अधिकारी या अदालत को यह शक्ति देता हो कि वह किसी आरोपी व्यक्ति से अपनी आवाज का नमूना पेश करने को कह सके"

14. कैदी पहचान अधिनियम 1920 की धारा 5 संयोग से मजिस्ट्रेट को किसी भी व्यक्ति को किसी भी जांच या कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए उसकी माप या तस्वीर लेने की अनुमति देने का निर्देश देने का अधिकार देती है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण हो सकता है कि द.प्र.सं. में उपर देखा गया संबोधन 29 अगस्त, 1980 की रिपोर्ट में विधि आयोग की सिफारिश की अगली कड़ी हो सकता है, हालांकि उक्त सिफारिश कैदियों की पहचान अधिनियम 1920 की धारा 5 के संदर्भ में थोड़ी संकीर्ण शब्दों में थी। इस संदर्भ में, यह भी उपयोगी रूप में देखा जा सकता है कि हालांकि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम् रामबाबु मिश्रा 5 ख्ए.आई.आर 1980 एस.सी 791, के मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि न्यायिक दण्डाधिकारी के पास

जांच के प्रयोजन से एक आरोपी को अपना लिखित नमूना देने का निर्देश देने की कोई शक्ति नहीं है और एक आरोपी को जांच के प्रयोजनों के लिए अपना नमूना लेखन देने का निर्देश देने के लिए संसद को सुझाव दिया गया था कि कैदियों के पहचान अधिनियम 1920 के धारा 5 के अनुरूप एक उपर्युक्त कानून बनाया जाए ताकि एक मजिस्ट्रेट को किसी व्यक्ति को जिसमें एक अपराध के आरोपी व्यक्ति भी शामिल है, को नमूना लेखन और लिखावट देने हेतु निर्देश देने का शक्ति निहित हो सके। इसके बजाय दण्ड प्रकिया (संबोधन) अधिनियम 2005 (2005 का अधिनियम सं0 25) के माध्यम से दण्ड प्रकिया संहिता में धारा 311 क 23 जून, 2006 को जोड़ा गया।

15. चुप रहने या धीमी' गति से कार्य करने में विधायी प्रतिक्रिया को हमेशा विधायी चिताओ और देखभाल और सावधानी के विचारों द्वारा समझाया जा सकता है। उपरोक्त संदर्भ में और किसी भी स्पष्ट वैधानिक प्रावधान की स्वीकार्य अनुपस्थिति में जो प्रश्न उठ रहा है, इसका उत्तर दिया जाना मुख्य रूप से उस सीमा में से एक है, जिसमें न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा कानून में एक स्पष्ट अंतर को औपचारिक विधायी अभ्यास लंबित रहने तक भरा जाना चाहिए। यह उपरोक्त प्रश्न है जिस पर अब हम विचार करेंगे ।

16."प्रक्रिया न्याय की दासी है, मालकिन नहीं, और मुकुमैबाज़ी में तथ्य-खोज पाठ्यक्रम को विफल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती (वताल नागराज बनाम आर.दयानन्द सागर, ए.आई.आर 1975 एस.सी 349)"6। हम इस न्यायालय के उपरोक्त दृष्टिकोण को पृष्ठ भूमि में रखते हुए आगे बढना चाहेंगे।

17. इस न्यायालय द्वारा "सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य ख्(1975) एस.सी.सी 774,"7 के मामले में तय किये गए तथ्यों का विस्तृत संदर्भ उचित माना जाता है। उपरोक्त मामले में अपीलकर्ता बिहार के पिूर्णिया जिले में स्थित लगभग 3.30 एकड़ भूमि के एक भूखंड का मालिक था। भूमि का उक्त टुकडा भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के प्रावधानों के तहत अधिग्रहण किया गया था। भू-अर्जन पदाधिकारी ने 12 अक्टूबर 1957 के आदेश/निर्णय द्वारा अपीलकर्ता को 14 रूपये प्रति कटठा की दर से मुआवजा दिया। विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, पूर्णिया ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 18 के तहत संदर्भ की सुनवाई करते हुए मुआवजा को बढाकर 200 रूपये प्रति कटठा कर दिया। यह 18 अगस्त 1961 के आदेश के अनुसार था। बिहार राज्य ने 18 अगस्त 1961 के उपरोक्त आदेश की समीक्षा की माँग की थी, जिसे 26 सितंबर 1961 को स्वीकार करते हुए मुआवजे की राशि को घटाकर 75 रूपये प्रति कटठा कर दिया गया था। संतुष्ट नहीं होने पर बिहार राज्य ने समीक्षा आवेदन में 75 रुपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजा देने के 26 सितम्बर 1961 के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की । हालाँकि, 200 रूपये प्रति कटठा की दर से मुआवजा देने के 18

अगस्त 1961 के मूल आदेश के खिलाफ बिहार राज्य द्वारा कोई अपील दायर नहीं की गयी थी। समीक्षा आवेदन में पारित 26 सितंबर 1961 के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष क्रास अपील, अपीलकर्ता-भूमि मालिक द्वारा दायर की गयी थी। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश 16 फरवरी 1968 द्वारा बिहार राज्य के समीक्षा आवेदन, जिसमें दिनांक 26 सितंबर 1961 को आदेश पारित किया गया था, को सुनवाई योग्य नहीं माना। हालांकि, उच्च न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला दिया और भू-स्वामी को 75 रूपये प्रति कटठा की दर से मुआवजा दिया। इससे व्यथित होकर भूमि मालिक सुशील कुमार सेन ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

न्यायमूर्ति के.के. मैथ्यू, जिन्होने मामले में प्रमुख निर्णय दिया था, का मानना था की संदर्भ न्यायालय की 18 अगस्त, 1961 की मूल डिक्री/निर्णय को समीक्षा आवेदन में पारित दिनांक 26 सितंबर 1961की डिक्री/निर्णय द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। हालांकि, एक बार जब 26 सितंबर 1961 की उक्त डिक्री/अवार्ड को भूमि मालिकों द्वारा दायर क्रास अपील में रदद कर दिया गया था तो 18 अगस्त 1961 की पिछली डिक्री अवार्ड को पुनर्जीवित कर दिया गया था। चूकि 18 अगस्त 1961 की उक्त डिक्री/अवार्ड के खिलाफ कोई अपील नही की गयी थी, इसलिए भूमि मालिक 18 अगस्त 1961 के मूल डिक्री/अवार्ड के अनुसार मुआवजे के हकदार होगें।

न्यायमूर्ति कृष्णा अययर ने उपरोक्त निष्कर्षों से सहमति व्यक्त करते एक विचार प्रक्रिया व्यक्त की, जो मौजूदा मुददे के लिए महत्वपूर्ण प्रासांगिक होगी। स्थिति को सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य (सुप्रा) के मामले में न्यायमूर्ति कृष्णा अययर द्वारा दी गयी राय से निम्नलिखित टिप्पणियों को निकाल कर सबसे अच्छी तरह समझाया जा सकता है।

"मै अपने विद्वान भाई न्यायमूर्ति मैथ्यू द्वारा निर्धारित कानून के अचूक तर्क द्वारा प्राप्त परिणाम से खेद जनक रूप में सहमत हूँ। कानून के हाथों न्याय की नष्वता एक न्यायाधीश की अंतरात्मा केा परेशान करती है और कानून सुधारक पर क्रेाध पूर्ण सवाल उठाती है।

6. प्रक्रियात्मक कानून कुछ प्रणालियों पर इतना हावी है कि वह मूल अधिकारों और सारभूत न्याय पर हावी हो गया है। मानवता वादी नियम यह है कि प्रक्रिया कानूनी न्याय की दासी होनी चालिए, मालकिन नहीं, न्यायाधीशों को पूर्व डेविटो जस्टिसिया के रूप में कार्य करने के लिए एक आविष्ट शक्ति प्रदान करने पर विचार करने के लिए मजबूर करती है, जहां अन्यथा दूखद परिणाम पूरी तरह से असमान होगा। वर्तमान मामले में, दीवानी अदालत द्वारा दिये गए मुआवजे की दर में असाधारण वृद्धि को चुनौती देने के लिए राज्य द्वारा लगभग हर कदम जो एक उचित वादी उठा सकता था, उठाया गया था और पीछे देखने पर पता चलता है कि समीक्षा

आवेदन और अपीलीय स्तर सफलता ही पक्षकार के लिए एक आपदा साबित हुई है। हो सकता है , सरकार ने अतिरिक्त सबूत पेश करके अपील में दी गयी बढ़ोतरी पर सफलता पूर्वक हमला किया हो लेकिन शायद महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक खामियों के निर्दयी परिणाम में कोई जगह नहीं है। मुझे आषा है कि संसद एक व्यापक, हालाँकि सावधानी से शब्दों मे कहे गए प्रावधान द्वारा न्यायाधीश को अंतिम संरक्षक बनाने की बुद्धिमता पर विचार करेगीं, जहां सही राहत में बाधा उन कमजोरियों से संबंधित है, यहाँ तक कि गंभीर प्रक्रियात्मक कानून में लग रही है। न्याय न्याय शास्त्र का लक्ष्य है-प्रक्रियात्मक, उतना ही वास्तविक। हालांकि इस अपील को मेरे विद्वान भाई द्वारा स्पष्ट रूप से बताये गये कारणों के आधार पर अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन मुझे एक निराषावादी टिप्पणी करनी चाहिए कि एक कानूनी प्रणाली के लिए प्रक्रियात्मक समयवद्धता की बेदी पर समानता और अच्छे विवेक के अंतिम उत्पाद का बलिदान करना बहुत ही शुद्धतावादी है और यदि आवश्यकता हो तो प्रक्रिया के नुस्खों को तेजी से झुकाकर स्पष्ट न्याय के विघटन को टालना इतना कटठरपंथी नही है। प्रक्रियात्मक पाप की मजदूरी कभी भी अधिकारों की मौत नहीं होनी चाहिए।“ (जोर हमारा है)।

18. वर्तमान मामले में यह विचार कि इस मुद्दे पर कानून विधान मंडल से निकलना चाहिए न कि न्यायालय से , जैसा कि इस न्यायालय के फैसले में व्यक्त किया गया है, जहां से संदर्भ निकला है, दो मुख्य कारणों पर आधारित हैः-

(1) आवाज की नमूना देने की बाध्यता किसी तरह से व्यक्ति के अधिकारों का हनन करती है और इसे मौजूदा कानून के दायरे मे लाने के लिए व्याख्या के सिद्धांतों मे उचित बदलाव और विस्तार की आवश्यकता होगी और ;पद्म यदि विधायिका आपराधिक प्रक्रिया संहिता (2005 का अधिनियम संख्या-25) में संबोधन करते समय भी बेखबर है और स्पष्ट अनुस्मरण के बावजूद धारा 53 या 53 क और 311क में नये पेश किये गए स्पष्टीकरण में आवाज का नमूना शामिल नहीं करना चुनती है तो भी यह तर्क दिया जा सकता है कि चीजो की बडी योजना में विधायिका कुछ ऐसा देखने में सक्षम है जो शायद न्यायालय गायब है।

19. जहां तक पहले आरक्षण का प्रश्न है, यह बोम्बे राज्य बनाम काठी कालू औघड (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय की पहले के फैसले से खारिज हो गया है, जिसका प्रासंगिक उद्धरण पहले ही दिया जा चुका है। बोम्बे राज्य बनाम काठी कालू औघड (सुप्रा) मामले मे न्यायमूर्ति के.सी. दास गुप्ता की सहमति वाली राय में निम्नलिखित विचार इसके विपरीत इस न्यायालय के दृष्टिकोण को और मजबूत करेंगे।

”;32..... यह ध्यान देना होगा कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 20(3) यह नही कहता है कि किसी आरोपी व्यक्ति को गवाह बनाने के लिए मजबूर नही किया जाएगा। इसमें कहा गया है

कि ऐसे व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर नही किया जाएगा। इसलिए जो सवाल उठता है, वह यह है: क्या कोई आरोपी व्यक्ति अपने खिलाफ सबूत प्रस्तुत कर रहा है, जब वह अपने लिखावट का नमूना, या अपनी उंगलियों, हथेली या पैर का निशान देता है? हमारी राय में इसका उत्तर नकारात्मक होना चाहिए।

;33..... नमूना लिखावट के सबूत या आरोपी व्यक्ति की उंगलियों, हथेली या पैर के निशान, उसे दोषी ठहरायेंगे, बशर्ते कि कुछ अन्य लिखावटों या कुछ अन्य छापों के साथ उनकी तुलना करने पर दोनो सेटों के बीच पहचान स्थापित हो जाती है। अपने आप में, ये छापे या लिखावटें आरोपी व्यक्ति को दोषी नही ठहराती है, या ऐसा करने की प्रवृति भी नही रखती है। इसलिए यह माना जाना चाहिए कि इन छापों या नमूना के लिखावट लेकर आरोपी व्यक्ति अपने खिलाफ सबूत प्रस्तुत नही करता है। इसलिए जब किसी आरोपी व्यक्ति को अपना नमूना लिखावट या अपनी उँगली, हथेली या पैर का निशान देने के लिए मजबूर किया जाता है, तो यह कहा जा सकता है कि उसे गवाह बनने के लिए मजबूर किया गया है। ; हालाँकि यह नहीं कहा जा सकता कि उसे अपने ही खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर किया गया है (जोर हमारा है)।

20. जहां तक लिये गए दृष्टिकोण के दूसरे आधार का संबंध है, हमने पहले ही एक राय व्यक्त की है कि कानून में अंतराल को भरने के लिए विधायी निष्क्रियता उचित विधायी चिंता देखभाल और सावधानी के कारण हो सकती है। हांलाकि, जब न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, कानून में एक गंभीर अंतर, कानून को प्रभावी और व्यवहारिक बनाने और समाजिक हितो की सेवा करने के लिए अस्थायी पैचवर्क की माँग करता है तो न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया अपरिहार्य हो जाएगी।

21. संवैधानिक न्यायालयों द्वारा क्षेत्राधिकार का प्रयोग जमीनी स्तर समसामयिक वास्तविकताओं/मौजूदा वास्तविकताओं द्वारा र्निदेषित होना चाहिए। न्यायिक शक्ति को अनम्य और नम्य मापदण्डो में फंसने या कठोर सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होने की अनुमति नही दी जानी चाहिए। सच है, न्यायिक कार्य कानून बनाना नही है लेकिन ऐसी स्थिति में जहां न्याय की पुकार और वह भी बडी सख्या में लोग जो न्यायालय के समक्ष पक्षकार नही है, कानून के एक मूक पहलू पर एक राय की अभिव्यक्ति की माँग करते है, जैसे रिक्तता को न केवल एजूस्डेम जेनेरिस के सिद्धांत पर बल्कि आसन्न आवश्यकता के सिद्धांत पर विधायिका से मामले में तुरंत कार्रवाई करने के आवाहन के साथ भरा जाना चाहिए।

22. उदाहरण के तौर पर, हम बंगलौर जल आपूर्ति और सिवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य [(1978) 2 एस.सी.सी 213] में इस न्यायालय का निर्णय ले सकते है। सीफोर्ड कोर्ट इस्टेटस लिमिटेड बनाम ऐशर (1949) 2 औल ई. आर 155 (एट 164)] में लार्ड डेनिंग गवर्नर

जनरल द्वारा प्रतिपादित कानून में अंतराल को भरने के लिए न्यायिक व्याख्या की सीमाओं के विस्तार के खिलाफ असहमति की एक अकेली आवाज को हांलाकि विद्वान न्यायाधीश के समकालीनो का तत्काल समर्थन नही मिला, लेकिन यह स्वीकर किया गया था कि यह अपने भीतर भविष्य की दृष्टि और धारणा लेकर आया है। संयोग से, सीफोर्ड कोर्ट इस्टेटस लिमिटेड बनाम ऐषर 9 (सुप्रा) मामले में लार्ड जस्टिस डेनिंग द्वारा कानून में क्रिज को इस्त्री करने के दृष्टिकोण को भारतयी सर्वोच्च न्यायालय ने तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एच.एम. बेग के निम्नलिखित शब्दों में अनुमोदित किया हैः

" 147 मेरे विद्वान भाई ने सीफोर्ड कोर्ट इस्टेटस लिमिटेड बनाम ऐषर (1949) 2 आल.इ.आर 155, 164, मामले में निमार्ण की उस पद्धति पर भरोसा किया है जिसे इग्लैंड में कुछ हद तक अपरांपरागत माना जाता था, जहां लार्ड डेनिग, एल.जे. ने कहा था: "जब कोई दोष सामने आता है तो एक न्यायाधीश सीधे तौर पर अपना हाथ नही मोड़ सकता और ड्राफटर्समैन को दोषी नही ठहरा सकता, उन्हें संसद की मंशा जानने के रचनात्मक कार्य पर काम करना चाहिए और फिर उन्हे लिखित शब्दों को पूरक करना चाहिए ताकि विधायिका की मंशा को "बल और जीवन " मिल सकें। एक न्यायाधीश केा स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि यदि अधिनियम के निर्माताओं को स्वयं की संरचना में इस गडबडी का पता चला होता तो उन्होने इसे कैसे ठीक किया होता? फिर उन्हे वैसा ही करना होगा जैसा उन्होने किया होगा। एक न्यायाधीश को उस सामग्री को नही बदलना चाहिए जिससे अधिनियम बुना गया है, लेकिन वह सिलवटों को दूर कर सकता है और करना भी चाहिए।"

जब यह मामला हाउॅस ऑफ लार्डस के पास गया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि ला लार्डस ने अस्पष्ट कानून को और अधिक समझने योग्य बनाने के ला लार्डस डेनिस के काफी प्रयास को अस्वीकार कर दिया। लार्ड सिमण्डस ने इसे "व्याख्या के छदम भेष के तहत विधायी कार्य का नग्नअतिक्रमण" पाया। लार्ड मार्टन (जिनके साथ लार्ड गोडार्ड पूरी तरह सहमत थे) ने कहा "ये वीरताए अनुचित है" और लार्ड टकर ने कहा" यदि डंनिंग एल.जे. द्वारा सामने रखा गया दृष्टिकोण, तो अपका आधिपत्य न्यायिक क्षमता के बजाय विधायी रूप से कार्य कर रहा होगा" प्रचलित होगा।

148 शायद समय बीतने के साथ वसीयत के निमार्ण में"आर्म-चेयर नियम "जैसी एक विधि के विस्तार के रूप में वर्णित किया जा सकता है। न्यायाधीश अधिक स्पष्ट रूप से विधायिका के स्थान पर कदम रख सकते है जहां एक अधिनियम अपने इरादों को बहुत अधिक अस्पष्ट या अनिश्चित स्थिति में छोड देता है। एम.पेंटिया बनाम मुददल्ला विरमलप्पाख् ए.आई. आर. 1961एस.सी. 1107, 1115, में न्यायमूर्ति सरकार ने उपर दियेा गए तर्क की मंजूरी दी जिसे लार्ड डेनिंग ने अपनाया था। और मुझे कहना होगा कि ऐसे मामले में जहां" उद्योग " की परिभाषा

को उसी स्थिति में छोड दिया गया है जिसमें हम इसे पाते हैं, स्थिति शायद कुछ न्यायिक वीरता की माँग करती है ताकि उठायी गयी कठिनाइयों का सामना किया जा सकें (जोर हमारा है)।

23. मैगोर एण्ड सेंट मेलन्स रूरल डिस्ट्रीक्ट काउँसील बनाम न्यूपोर्ट कारपोरेशन [(1951) 2 ।औल ई आर 155 1226] में लार्ड जस्टिस डेनिंग का एक सामान दृष्टिकोण नोटिस करने के लिए सामान रूप से उपयुक्त होगा।

"हम यहाँ संसद और मंत्रियों के इरादे का पता लगाने और इसे क्रियान्वित करने के लिए बैठे हैं और हम इसे विनाशकारी विश्लेषण के लिए खोलने की तुलना में अंतराल को भरने महसूस करके और अधिनियम की समझ बनाकर बेहतर करते हैं"

24. क्या किसी व्यक्ति को अपनी आवाज का नमूना देने के लिए बाध्य करने वाला न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 20 (3) के तहत निजता के मौलिक आधार का उल्लंघन करेगा, यह अगला प्रश्न है। यह मुददा दिलचस्प और बहस योग्य है, लेकिन हमारे सामने इस पर कोई बहस नही हुई है, यह नोट करना प्रयाप्त होगा कि मार्डन डेंटल कालेज एण्ड रिसर्च सेंटर और अन्य बनाम मध्यप्रदेश राज्य और अन्य [(2016) 7 एस.सी.सी 353] गोविंद बनाम मध्यप्रदेष राज्य और अन्य [(1975) 2 एस.सी.सी 148] और इस न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ ने के. एस. पुटटास्वामी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य [(2017) 10 एस.सी.सी 1)] में निजता के मौलिक अधिकार को पूर्ण नही माना जा सकता है और इसे बाध्यकारी सार्वजनिक हित के सामने झुकना होगा। हम किसी भी अन्य चर्चा से बचते हैं और हमारे सामने विशेष रूप से नहीं उठाये गए किसी मुद्दे पर केाई और टिप्पणी दर्ज करना उचित नही समझते है।

25. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, हम निःसंकोच यह विचार रखते है कि जब तक संसद द्वारा दण्ड प्रकिया संहिता में स्पष्ट प्रावधान नहीं किये जाते, तब तक एक न्यायिक मजिस्टेट को किसी अपराध के जाँच के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को अपनी आवाज का नमूना देने का आदेश देने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। ऐसी शक्ति न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया और भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय में निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग द्वारा एक मजिस्ट्रेट को प्रदान की जानी है। हम तदनुसार आदेश देते है और परिणामस्वरूप उपरोक्त के अनुसार अपील का निपटारा करते हैं।

अपील निस्तारित

(संजय कुमार उपाध्याय)